भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में संन्यासी-फकीर विद्रोह की भूमिका

डॉ. सी.पी. गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय हरदा मध्यप्रदेश
मो.नं.- 7974824118
Emai Id l-chandrapal.gupta@yahoo.com

सारांश:- *1857 की क्रांति एक युगांतकारी घटना के रूप में भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है, किंतु इस महान क्रांति के पूर्व भी भारतीय समाज, अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध पूरी तरह से शांत कभी नहीं रहा। जब हम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि 1757 के प्लासी के युद्ध से लेकर 1857 की महान क्रांति तक 40 से भी अधिक बड़े विद्रोह और सैकड़ों की संख्या में छिटपुट क्षेत्रीय विद्रोह हुए, किंतु दुर्भाग्य है कि ये क्षेत्रीय विद्रोह सफलता प्राप्त नहीं कर सके। जिसका प्रमुख कारण इन सभी विद्रोहों में आपसी सामंजस्य, एकता और संगठन का अभाव माना जा सकता है। भारत का दुर्भाग्य रहा है कि ये विद्रोह कभी भी सर्वव्यापी और राष्ट्रीय प्रकृति वाले सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि धर्म, भाषा, क्षेत्र, उद्यम और संस्कृति की विविधता के कारण यह विद्रोह एक सीमित दायरे में ही सक्रिय रहे। या यूं कहें कि इस विविधता ने भारतीयों को एकजुट होकर, एक साथ ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य पर हमला नहीं करने दिया। ये विद्रोह असफल होकर भी भारतीयों की शोषण के विरुद्ध लड़ने की इच्छाशक्ति को जरूर चीख-चीख कर अभिव्यक्त करते रहे हैं। ऐसे ही क्षेत्रीय विद्रोहों में* ***सन्यासी-फ़कीर*** *विद्रोह का उल्लेख किया जा सकता है, किंतु भारत का यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि संन्यासी विद्रोह इतना सशक्त और विस्तृत क्षेत्र में फैलाव के बाद भी संपूर्ण राष्ट्र को एकजुट नहीं कर सका, अन्यथा अंग्रेजों का भारत में साम्राज्य स्थापित करने का सपना कभी भी पूरा नहीं हो पाता।*

मुख्य कुंजी शब्द:- औपनिवेशिक, रणनीतिक स्ट्रैटिजी, गुरिल्ला युद्ध,निर्धनता, अकाल, उत्पीड़न, साहूकार, आदि।

भूमिका:-

इंग्लैंड के कुछ व्यापारियों ने मिलकर एक कंपनी बनाई, जिसका नाम ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी रखा गया और उसे शाही फरमान द्वारा 31दिसंबर 1600 ई. को विधिवत मान्यता भी प्रदान कर दी गई। यद्यपि प्रारंभ में यह केवल धनाढ्य व्यापारियों और शेयर धारकों की कंपनी थी, जिसका प्रमुख उद्देश्य पूर्व के साथ व्यापार करते हुए ब्रिटिश आर्थिक नीतियों को संरक्षित और सुरक्षित करना था, किंतु धीरे-धीरे इसने भारत में अपनी जड़ें मजबूत कीं और तत्कालीन बेसुध भारतीय शासकों से अनेक ऐसे सुविधायुक्त और विशेषाधिकार युक्त फरमान प्राप्त कर लिए, जिससे उन्हें व्यापार में अतिरिक्त लाभ मिलना प्रारंभ हो गया और यही अतिरिक्त लाभ उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा का कारण बना। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, व्यापार से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद में कब बदल गई, भारतीय राजे-रजवाड़ों और जमीदारों को इसका अहसास ही नहीं हुआ। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष और आत्मनिर्भरता की अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में जकड़ गई।

दक्षिण भारत में राजनीतिक रूप से स्थापित होने के उपरान्त ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को षड्यंत्र पूर्वक और इसके उपरांत 1764 ई. के बक्सर के युद्ध में सूझबूझ और कुशल रणनीतिक स्ट्रैटिजी द्वारा भारत की तीन बड़ी शक्तियों- मुगल बादशाह शाहआलम द्वीतीय, बंगाल के पदच्युत नवाब

मीर कासिम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला की संयुक्त सेनाओं को परास्त करके भारत की एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति होने का दावा प्रस्तुत करने में सफल रही।

संन्यासी और फकीर विद्रोह की पृष्ठभूमि:-

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बक्सर युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत अवध के नवाब और मुगल बादशाह से 1765 ई. में इलाहाबाद की संधि की और उस संधि के माध्यम से अनेक ऐसी राजनीतिक और आर्थिक रियायतें प्राप्त कर लीं, जिससे समस्त भारतीयों की मुसीबतें बढ़ना स्वाभाविक था। इस संधि के उपरांत ही बंगाल के गवर्नर लॉर्ड क्लाइव ने बंगाल की नवाबी प्राप्त करके वहां द्वैध शासन लागू किया। चूंकि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में व्यापार के माध्यम से मुनाफा कमाने के लिए ही आई थी, परिणाम स्वरूप अब वह व्यापार के साथ-साथ बंगाल की दीवानी से भी मुनाफा कमाने लगी। उसने भारतीय किसानों, व्यापारियों, शिल्पकारों और दस्तकारों का खुल्लम खुल्ला शोषण करना प्रारंभ कर दिया और वह भी बिना किसी उत्तरदायित्व के। जब मुगल बादशाह पूरी तरह से कंपनी के ऊपर आश्रित हो गया, तब ऐसी स्थिति में बड़ी संख्या में मुगल सेना के सैनिकों को सेवा से मुक्त कर दिया गया, जिससे सैनिकों में असंतोष का होना स्वाभाविक था।

प्रारंभ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भारतीय वस्तुओं को खरीदने के लिए सोना या चांदी देना पड़ता था, किंतु अब वह भारतीयों से वसूले गए भू-राजस्व के माध्यम से ही भारतीय वस्तुएं खरीद कर लंदन भेजने लगी। कंपनी इंग्लैंड की मांग को बिना इंग्लैंड की पूंजी दिए वस्तुएं खरीदना चाहती थी, परिणाम स्वरूप उसने भू-राजस्व बढ़ाने के लिए आनन-फानन में अनेक प्रयोगात्मक भू-भाटक प्रणालियां अपनाईं। परिणाम स्वरूप उन्होंने सभी प्रकार के नियम और नैतिकता को नजरअंदाज करते हुए बंगाल की भूमि अधिकतम बोली लगाने वाले ऐसे जमींदार बिचौलियों को ठेके पर देना प्रारंभ कर दिया, जिनकी रुचि भूमि के विकास में बिल्कुल भी नहीं थी। वे अधिकाधिक भू-राजस्व वसूल करने के लिए किसानों का किसी भी सीमा तक उत्पीड़न करने के लिए तैयार थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि एक दशक में ही भारत का अन्न भंडार कहा जाने वाला बंगाल, कंगाल प्रदेश के रूप में बदल गया। बंगाल के किसानों को ना केवल अधिकाधिक भू-राजस्व देना पड़ता था, बल्कि उनसे भू-राजस्व की वसूली भी बहुत ही क्रूरतम और अमानवीय तरीके से की जाती थी। जिसका परिणाम बंगाल के किसानों की बदहाली था।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकर्ता विलियम बोल्टस ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि निर्धन और असहाय किसानों को कभी-कभी तो लगान चुकाने के लिए अपने बच्चे तक बेचने पड़ते थे या फिर उन्हें भूमि छोड़कर भागना पड़ता था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की इस शोषणकारी और उत्पीड़न कारी नीति के संबंध में एक अन्य ब्रिटिश नागरिक रिचर्ड बीचर ने भी बड़े ही तल्ख लहजे में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टर को पत्र लिखा था कि भारत एक ऐसा देश है जो अनेक स्वेच्छाचारी, निरंकुश और तानाशाही शासकों के उत्पीड़न के उपरांत भी हरा-भरा तथा लहलहाता रहा है। किंतु दुर्भाग्य है कि हमारी ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब से बंगाल में नवाबी प्राप्त करके वहां द्वैध शासन लागू किया है, तब से यह देश उजाड़ और तबाह हो गया है और यहां का किसान भुखमरी और निर्धनता के कारण काल के गाल में जाने को विवश हुआ है।

चमड़ी के गोरे और दिल के काले अंग्रेजों की नीतियों और द्वैध शासन के कारण ही बंगाल में 1770 के दशक में भीषण अकाल पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप किसानों और गरीबों के सम्मुख केवल और केवल विद्रोह ही विकल्प शेष रह गया था। अंग्रेजों ने अकाल के समय भारतीयों की मदद करने के बजाय अपने शोषण को और अधिक बढ़ा दिया था। इस अकाल के कारण संपूर्ण देश में मौत का सन्नाटा छाया हुआ था, तब भी पत्थर दिल

अंग्रेज प्रशासन भू-राजस्व में रियायत और वसूली में किसी प्रकार की नरमी नहीं बरत रहा था, बल्कि सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1770 में पिछले वर्षों की तुलना में ज्यादा लगान वसूल किया गया था जबकि दूसरी तरफ लोग भूखों मर रहे थे। भुखमरी की भीषणता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है की भूखे लोगों ने, क्षुधा को शांत करने के लिए मृतकों तक का मांस खाया, इसकी पुष्टि तत्कालीन दस्तावेजों से भी होती है। इस भीषण अकाल ने बंगाल की लगभग एक तिहाई अर्थात एक करोड़ जनसंख्या को अन्न के अभाव में हमेशा-हमेशा के लिए मौत की नींद सुला दिया।

यद्यपि भारतीय कृषक समाज प्राचीन काल से ही अन्नदाता और करदाता के रूप में जाना जाता रहा है, क्योंकि राज्य की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व था और यह वर्ग एक प्रकार से राज्य कोष को संपोषित करने वाला महत्त्वपूर्ण वर्ग था। वह भारतीय समाज का एक बहुसंख्यक वर्ग था, किंतु वह वास्तव में अधिकारों से रहित और दायित्वों के बोझ से लदा हुआ था।

यह वर्ग धीरे-धीरे एक प्रकार से हाशिए पर ढकेल दिया गया, सामान्यतः कई इतिहासकारों ने तो यही अनुमान लगाया है कि यह समाज सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व प्रशासनिक रूप से पिछड़ा हुआ था और इसकी राष्ट्रीय चेतना कमजोर थी, किंतु वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग है। जब देश के एक वर्ग के राजा-रजवाड़े, जमींदार, साहूकार, व्यापारी, शिल्पकार और दस्तकार अंग्रेजों की नीतियों को अपने विकास के लिए बिल्कुल भी बाधा नहीं मान रहे थे या यूं कहें कि यह वर्ग अंग्रेजों को विकास दूत के रूप में देख रहा था और उनके लिए पलक पांवरे बिछाए हुए था। इसी समय भारत का एक दूसरा वर्ग था जो अंग्रेजों की शोषणकारी, दमनकारी नीति और तानाशाही के विरुद्ध लड़ने के लिए समाज में सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन लाने की मुहिम चलाना चाहता था, जिससे कि समग्र समाज एक होकर इन अंग्रेजों का मुकाबला कर सके।

तभी भारतीय कृषक समाज ने बहुरूपिया अंग्रेजों की कुत्सित और शोषणवादी प्रवृत्ति को ना केवल पहचान लिया था बल्कि इनके विरुद्ध संगठित होकर विद्रोह भी किया जिसका नाम था- संन्यासी-फ़कीर विद्रोह। उक्त परिस्थितियों में ही गरीब और असहाय किसान संन्यासी-फकीर विद्रोह के साथ कंधे से कंधा मिलाने के लिए उद्धत हुआ। द्वैध शासन प्रणाली और ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के विरुद्ध सर्वप्रथम आवाज बुलंद करने वाला भी संन्यासी-फकीर विद्रोह ही था। जिसने 1763 ई. से लेकर 1800 ई. तक अंग्रेजों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध नीति द्वारा ब्रिटिश सरकार को नाकों चने चबवा दिए।

बंगाल में किसान, शिल्पकार और कारीगर निरंतर अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों का शिकार हुए। परिणाम स्वरूप उन्होंने 1764 ई. के बाद अंग्रेजों, जमीदारों और साहूकारों के विरुद्ध संघर्ष करना प्रारंभ कर दिया था। विद्रोह करने वाले इस वर्ग को मुगल सेना से छंटनी किए गए सैनिकों का भी भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। विद्रोहियों को तत्कालीन बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने सन्यासी विद्रोह की संज्ञा दी और इन्हें खानाबदोश व पेशेवर उपद्रवी डाकू कहा है और कुछ अविवेकी इतिहासकारों ने भी वारेन हेस्टिंग्स के हाँ में हाँ मिलाया है। जबकि तत्कालीन सरकारी दस्तावेजों से जो साक्ष्य प्राप्त होते हैं उससे यह सिद्ध होता है कि इन विद्रोहियों ने कभी भी अपने ग्रामीणों या किसानों को ना तो तंग किया और ना ही उन्हें लूटा, अंग्रेज अधिकारियों द्वारा लिखे गए पत्रों से भी सिद्ध होता है कि ग्रामीण किसानों ने विद्रोहियों को रसद और आश्रय-आवास उपलब्ध कराकर उनकी सहायता भी की। इन विद्रोहियों के निशाने पर अंग्रेज और उनकी शोषणकारी व्यवस्था वाली संस्थाएं होती थी। विलियम विल्सन हंटर और ब्रिटिश प्रशासक ओमैली के विवरणों से भी स्पष्ट होता है कि यह विद्रोह वास्तव में भूमि से बेदखल, सर्वहारा

किसानों, कारीगरों और शिल्पकारों का विद्रोह था, जिसे पीछे से सैनिक सेवा से निकाले गए सैनिकों, संन्यासियों , व्यापारियों और फकीरों का पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा था। नागा और गिरि हिंदू संन्यासी मध्यकाल से ही राजपूतों और मराठों शासकों तथा अवध और बंगाल के नवाबों के यहां मुख्य सेना के महत्त्वपूर्ण अंग हुआ करते थे। इस विद्रोह में राजपूतों, पठानों और सेना से निकाले गए भारतीय सैनिकों ने विद्रोहियों को प्रशिक्षण देकर उनकी सहायता की। साथ ही संन्यासियों और फकीरों को अंग्रेज प्रशासन द्वारा तीर्थ यात्रा से रोका जा रहा था, जिससे इनके अंदर भी अंग्रेज प्रशासन के विरुद्ध आक्रोश था।

इस प्रकार विद्रोही संगठित और प्रशिक्षित थे और उनमें जोश और मातृभूमि के प्रति राष्ट्रभक्ति भरने का कार्य संन्यासियों और फकीरों द्वारा जोशीले भाषणों और प्रवचनों के माध्यम से किया गया। उन्होंने विद्रोहियों को प्रोत्साहित किया कि मातृभूमि की रक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष, से बड़ा और कोई धर्म नहीं हो सकता। विद्रोही नेता **ओम वंदे मातरम** का शंखनाद करते थे। बंगाल और बिहार में फैले इस विद्रोह को - **मजनू शाह, मूसा शाह, चिराग अली, भवानी पाठक, देवी चौधरानी, कृपानाथ, नूरुल मोहम्मद, पीतांबर, अनूप नारायण श्रीनिवास** जैसे महान नेताओं ने सक्रिय नेतृत्त्व प्रदान किया।

विद्रोहियों ने ब्रिटिश सरकार की प्रत्येक उस संस्था, व्यवस्था और अधिकारी को अपना निशाना बनाया, जो उनके शोषण का कारण या माध्यम था। विद्रोहियों द्वारा अंग्रेज की कोठियों पर आक्रमण करके माल, गोला-बारूद और नकदी लूटी जाती थी तथा उसे आम नागरिकों और जरूरतमंद गरीबों में बांट दिया जाता था। इन विद्रोहियों ने सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया कंपनी की ढाका स्थित कोठी पर हमला किया, क्योंकि यह कोठी भारतीय, किसानों, शिल्पकारों, जुलाहों और कारीगरों पर होने वाले अत्याचारों का केंद्र थी, इसी ने उनके व्यवसायों को नष्ट किया था। विद्रोहियों के हमले से भयभीत होकर अंग्रेज व्यापारी, अधिकारी, कोठी के रक्षक और उसके व्यवस्थापक लीसेस्टर रातों-रात जान बचाकर भाग खड़े हुए और कोठी पर विद्रोहियों का कब्जा स्थापित हो गया और तब तक बना रहा जब तक कि अंग्रेज **कैप्टन ग्रांट** एक बड़ी सेना लेकर वहां नहीं आ गया। विद्रोहियों ने इसी प्रकार अपना अगला निशाना राजशाही जिले की **रामपुर बोआलिया** को बनाया और उसके व्यवस्थापक **बेनेट** को कैद करके पटना ले गए, जहां उसका बध कर दिया गया।

विद्रोहियों ने **रामानंद गोसाईं** के नेतृत्व में अपनी गुरिल्ला या छापामार युद्ध नीति के द्वारा अगला प्रहार कूचबिहार में किया और जब तक वहां अंग्रेज सेनापति लेफ्टिनेंट मारिसन पहुंचता, विद्रोही उस कोठी पर भी कब्जा कर चुके थे, किंतु कंपनी की ताकत को देखते हुए विद्रोहियों ने लूटपाट करके भागने का दिखावा किया और अगस्त, 1766 ई. में ब्रिटिश सेना को परास्त कर दिया। **मारिसन** और कैप्टन रेनेल का भाई और सेनापति रिचार्ड बुरी तरह से घायल हो गए किंतु जान बचाकर भागने में सफल रहे। जबकि आर्मीनियाई अधिकारी सहित अनेक काले-गोरे अधिकारी भी मारे गए और अन्य कई बुरी तरह से घायल हुए।

इसी प्रकार विद्रोहियों ने पटना के आसपास के अंग्रेज अधिकारियों और जमींदारों पर भी हमले किए और उन्हें लूटा। सारन जिले में भी 5000 विद्रोहियों की संगठित सेना ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भयंकर क्षति पहुंचाई। अंग्रेजों की हुसेपुर कोठी को भी विद्रोहियों ने भारी क्षति पहुंचाई और कुछ समय के लिए उस पर अपना अधिकार भी जमा लिया। इस क्षेत्र में विद्रोहियों ने एक प्रकार की अपनी समानांतर सरकार का ही गठन कर लिया था। 1766 ई. में नेपाल की सीमा में अंग्रेज सौदागरों का प्रतिनिधि मार्टेल जब लकड़ी कटवाने गया तो विद्रोहियों ने उसे बंदी बनाकर उस पर मुकदमा चलाया और मृत्युदंड दे दिया, इससे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासन हिल गया

और जवाबी कार्यवाही के लिए उसने 1769 ई. में मैकेंजी और लेफ्टिनेंट किथ को एक विशाल सेना के साथ भेजा। विद्रोहियों ने गुरिल्ला युद्ध का परिचय देते हुए अंग्रेज सेनापतियों को झांसा देते हुए जंगल के अंदर ले गए और फिर चारों तरफ से अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े परिणाम स्वरूप अंग्रेज सेनापति किथ मारा गया।

1770-71 ई. में भी बिहार के पूर्णिया जिले में विद्रोहियों ने ब्रिटिश सेना पर हमले किए, किंतु यहां 500 विद्रोहियों को अंग्रेज सरकार गिरफ्तार करने में सफल रही, इन गिरफ्तार कैदियों के बयानों से स्पष्ट हो गया कि सभी विद्रोही स्थानीय कृषक थे और उनका नेता भी स्थानीय किसान ही था। इसके साथ ही विद्रोहियों ने दिनाजपुर, रंगपुर, मैमनसिंह, बगुड़ा, जलपाईगुड़ी, प्राचीन नगर महास्थान गढ़ और पौण्ड्रवर्द्धन के दुर्ग में रहते हुए अपने आपको संगठित किया तथा आसपास की कोठियों और अंग्रेजों के वफादार जमीदारों को जमकर लूटा।

नाटोर के अंग्रेज सुपरवाइजर द्वारा 25जनवरी 1772 ई. को रेवेन्यू कौंसिल को लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय नागरिकों और किसानों ने विद्रोहियों की मदद की और विद्रोही भी स्थानीय जनता से कभी भी कोई जोर जबरदस्ती नहीं करते थे, बल्कि सरकार को वे भू-राजस्व नहीं देते थे, बल्कि स्वेच्छा से उस भू-राजस्व को विद्रोहियों को सहयोग के रूप में दे देते थे।

31 दिसंबर 1772 ई. को रंगपुर के सुपरवाइजर पालिंग ने रेवेन्यू कौन्सिल के नाम जो पत्र लिखा था उससे भी स्पष्ट होता है कि, स्थानीय किसानों ने अंग्रेजों का कोई सहयोग नहीं किया, बल्कि अंग्रेज सेनापति टामस बड़ी सेना लेकर जो कि विद्रोहियों को कुचलने के लिए गया था, विद्रोहियों ने उसे छापामार युद्ध रणनीति में फंसाकर जंगल के अंदर ले गए और वहां आम नागरिकों, किसानों और आदिवासियों ने टामस व उसके सैनिकों पर चारों तरफ से हमला कर दिया, जब टामस ने अपनी सेना के देशी सिपाहियों को जवाबी हमला करने का आदेश दिया तो उन्होंने देशभक्ति दिखाते हुए अपने देश के किसानों पर गोली चलाने से साफ इनकार कर दिया, परिणामस्वरूप ब्रिटिश सेनापति **टामस मारा गया।** इसी प्रकार 1 मार्च 1773 ई. को अंग्रेज सेनापति कैप्टन एडवर्ड्स अपनी सेना सहित विद्रोहियों के हाथों मारा गया और केवल 12 सैनिक बचकर किसी प्रकार भागने में सफल रहे।

विद्रोहियों को कुचलने के लिए बंगाल के तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने आदेश दिया था की जो भी किसान विद्रोहियों की सहायता करें उन्हें गुलामों की भांति बेच दिया जाए, परिणामस्वरूप अनेक विद्रोहियों को गुलाम बनाया गया और उनके परिवार के साथ अमानवीय अत्याचार किए गए, किसानों को बड़ी संख्या में सार्वजनिक जगहों पर फांसी दी गई, जिससे किसानों में दहशत पैदा की जा सके, किंतु किसान ना डरे और ना ही झुके। 1919 के रौलट एक्ट की अमानवीय व्यवस्था- ना वकील, न दलील, ना अपील के तानाशाही व्यवहार को सन्यासी विद्रोहियों के विरुद्ध पहले ही वारेन हेस्टिंग्स अपना चुका था और हजारों की संख्या में विद्रोहियों का साथ देने के शक के आधार पर ग्रामीण किसानों को बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के फांसी पर लटका दिया गया था।

15नवंबर 1776 ई. को उत्तरी बंगाल में मजनू शाह के नेतृत्व में विद्रोहियों और अंग्रेज सेनापति लेफ्टिनेंट राबर्टसन के मध्य मुठभेड़ हुई। यहां विद्रोहियों ने क्रमशः पीछे हटने का ढ़ोंग किया और जब ब्रिटिश सेना जंगल में अंदर तक आ गई, तब उस पर चौतरफा हमला बोल दिया, परिणामस्वरूप राबर्टसन गोली लगने से क्षत-विक्षत हो गया।

29 दिसंबर 1786 ई. को एक बार पुनः अंग्रेज सैनिकों और सन्यासी विद्रोह के नेता मजनू शाह के बीच मुठभेड़ हुई जिसमें मजनू शाह गंभीर रूप से घायल हो गए और इसके एक-दो दिन पश्चात उनकी मृत्यु हो गई। जून

1787 ई. तक विद्रोही भवानी पाठक और देवी चौधरानी के नेतृत्व में अंग्रेजों को सक्रिय रूप से चुनौती प्रस्तुत करते रहे। 1800 ई. तक संन्यासी विद्रोह किसी न किसी रूप में अंग्रेजों के विरुद्ध छिटपुट विद्रोह करते रहे, किंतु अंग्रेजों की आधुनिक और शक्तिशाली सेना के सम्मुख संन्यासी विद्रोह को कुचल दिया गया। इस संन्यासी विद्रोह का उल्लेख बंकिम चंद्र चटर्जी के आनंद मठ में भी प्राप्त होता है।

इस विद्रोह का विस्तार प्रमुख रूप से दक्षिणी बिहार और उत्तरी बंगाल में देखा जा सकता था। संन्यासी और फकीरों को विकास, संगठन, समस्या, संवाद, संबंध और एक दूसरे की समझ ने एक दूसरे को निकट ला दिया था। अन्यथा मुगलों से करमुक्त भूमि प्राप्त करने वाले फकीरों के हमलों के प्रत्युत्तर में ही कभी संन्यासियों के सशस्त्र समूह का गठन किया गया था। संन्यासी घुमक्कड़ एवं जन्मजात लड़ाकू थे। संन्यासियों द्वारा अपनी जीविका चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के उद्यम अपनाए गए थे जैसे कि कृषि कार्य, महाजनी, (ग्रामीणों को जरूरत पड़ने पर वह ब्याज में रुपया देते थे) वे कच्चा रेशम, फुटकर वस्तुएं और खुरदरे कपड़े ताँबे और मसाले का व्यापार करके भी अपनी जीविका चलाते थे। संन्यासी युद्धोपजीवी दशनामी संप्रदाय से संबंधित थे। दूसरी तरफ मदारी फकीरों का संबंध शाहे मदार के सूफी सिलसिले से था, इन्हें मुगल शासकों द्वारा ही करमुक्त भूमि प्रदान की गई थी, किंतु अंग्रेजों ने पुरातन व्यवस्था को बदलते हुए उनसे कर मुक्त भूमि पर भी जबरन कर वसूली प्रारंभ कर दी थी, जिससे फकीरों में गुस्सा और उत्तेजना थी और वे विद्रोह के लिए तैयार हो गए।

यही कारण है कि भारत में आजादी की लड़ाई का शंखनाद करने का श्रेय देश के विभिन्न क्षेत्रों के किसानों और आदिवासी समुदायों को ही दिया जा सकता है। यह पूरी तरह से सर्व सिद्ध है कि समाज का सबसे शोषित और उत्पीड़ित वर्ग ही आजादी के लिए आगे आया करता है। कृषक समाज तथाकथित पहले से ही उत्पीड़ित और उपेक्षित था। परिणामस्वरूप उसने अंग्रेजों के और अधिक उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। संन्यासियों का जब यह विद्रोह अपने चरम पर था तब इसमें विद्रोहियों की संख्या 50000 के आसपास थी।

सारांश:- इस विद्रोह की सक्रियता और विद्रोहियों के उत्साह को इसी से समझा जा सकता है कि अनेक अंग्रेज सेनापतियों को या तो विद्रोहियों ने मौत के घाट उतार दिया या उन्हें गंभीर रूप से घायल किया यदि इस विद्रोह पूरे देश में एक साथ अंजाम दिया गया होता तो निश्चित तौर पर भारत का इतिहास दूसरा होता और अंग्रेजों की जड़ें मजबूत होने से पहले ही उखाड़ कर फेंक दी गई होती। इन आम नागरिकों, किसानों, मजदूरों, व्यापारियों, संन्यासियों और वकीलों ने मिलकर दर्जनों अंग्रेज सेनापतियों को मौत के घाट उतारा था। यद्यपि यह विद्रोह असफल रहा, लेकिन इसने अंग्रेजों को अंदर तक दहला दिया था।

संदर्भ ग्रंथ:-

- **बंद्योपाध्याय शेखर (2022), पलासी से विभाजन तक और उसके बाद आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैक्स्वान प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद**
- **प्रोफेसर विपिन चंद्र(1995), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**
- **ग्रोवर बी एल और यशपाल (1994) आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन, एस चन्द एंड कंपनी लि. रामनगर नई दिल्ली**

- शर्मा एल.पी. (14वां संस्करण), आधुनिक भारत का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा-3
- पांडे एस. के.(2014), आधुनिक भारत का इतिहास, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद
- सरकार सुमित (2021), आधुनिक भारत 1885-1947, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली
- (7)अग्निहोत्री डॉ वी. के.(तृतीय संस्करण 1998), भारतीय इतिहास, एलाइड पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली

Research Hub International Journal